

८. साहित्य की सच्चाई

- जैनंद्र कुमार

भाइयो,

मेरी उमर ज्यादा नहीं है। पढ़ा भी ज्यादा नहीं हूँ। साहित्य शास्त्र तो बिलकुल नहीं पढ़ा हूँ। फिर भी लिखने तो लगा। इसका श्रेय परिस्थितियों को समझिए। यों अधिकार मेरा क्या है? लिखने लगा तो लेखक भी माना जाने लगा और आज वह दिन है कि आप विद्वान लोग भी आज्ञा देते हैं कि मैं आपके सामने खड़े होकर बोल पड़ूँ।

आप लोगों द्वारा जब मैं लेखक मान लिया गया और मेरा लिखा गया कुछ छपने में भी आया, तब मैं अपने साहित्यिक होने से इनकार करने का हक छिना बैठा; लेकिन अपनी अबोधता तो फिर भी जतला ही सकता हूँ। वह मेरी अबोधता निबिड़ है। साहित्य के कोई भी नियम मुझे नहीं लगे हैं। साहित्य को शास्त्र के रूप में मैं देख ही नहीं पाता हूँ; पर, शास्त्र बिना जाने भी मैं साहित्यिक हो गया हूँ, ऐसा आप लोग कहते हैं। अब मुझे कहना है कि साहित्य शास्त्र को बिना जाने भी साहित्यिक बना जा सकता है और शायद अच्छा साहित्यिक भी हुआ जा सकता है। इसमें साहित्य शास्त्र की अवज्ञा नहीं है, साहित्य के तत्त्व की प्रतिष्ठा नहीं है।

साहित्यिक यदि मैं हूँ तो इसका मतलब मैंने अपने हक में कभी भी यह नहीं पाया है कि मैं आदमी कुछ विशिष्ट हूँ। इंसानियत मेरा, सदा की भाँति, अब भी धर्म है। सच्चा खरा आदमी बनने की जिम्मेदारी से मैं बच नहीं सकता। अगर साहित्य की राह मैंने ली है, तब तो भाव की सच्चाई और बात की मिठास और खरेपन का ध्यान रखना और इसी प्रकार का सर्वसामान्य धर्म मेरा और भी अन्य धर्म हो जाता है। इस दृष्टि से, मैं आज अनुभव करता हूँ कि साहित्य के लिए वही नियम हैं जो जीवन के लिए हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि जैसा मुझे दुनिया में रहना चाहिए, वैसा साहित्य में भी क्यों न रहना चाहिए? जितनी मेरे शब्दों से मेरे मन की लगन है उतना ही तो उनमें जोर होगा! जिंदगी ही में नहीं तो शब्दों में जोर आएगा कहाँ से?

अपने जीवन की एक कठिनाई मैं आपके सामने रख दूँ। आँख खोलकर जब दुनिया देखता हूँ तो बड़ी विषमता दिखाई देती है। राजा हैं और रंक हैं, पहाड़ हैं और शिशु हैं, दुख हैं और सुख हैं !... यह



परिचय

जन्म : १९०५, कौडियालगंज,
अलीगढ़ (उ.प्र.)

मृत्यु : १९८८, नई दिल्ली

परिचय : प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनंद्र कुमार जी का विशिष्ट स्थान है। आप हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र का आश्रय लेकर आपके पात्र विकास को प्राप्त होते हैं। आपको १९७१ में 'पद्मभूषण' और १९७७ में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

प्रमुख कृतियाँ : 'परख', 'त्यागपत्र' (उपन्यास), 'फाँसी', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'जैनंद्र की कहानियाँ' (कहानी संग्रह), 'जड़ की बात', 'पूर्वोदय' (निबंध संग्रह), 'मंदालिनी', 'प्रेम में भगवान', 'पाप और प्रकाश' (अनूदित ग्रंथ), 'तपोभूमि' (सह लेखन), 'साहित्य चयन' आदि।



गद्य संबंधी

प्रस्तुत भाषण में जैनंद्र जी ने साहित्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। आपने यहाँ साहित्य और विज्ञान की तुलना करते हुए साहित्य की सच्चाई बताई है।

मौलिक सृजन

‘मेरी पसंदीदा पुस्तक’
विषय पर अपने विचार
लिखो।



संभाषणीय

किसी पढ़ी हुई कहानी के
आशय पर चिंतन करो और
उसमें व्यक्त विचार, कल्पना
का आकलन करते हुए
सत्यापन हेतु प्रश्न पूछो।

विषमता देखकर बुद्धि चकरा जाती है। इस विषमता में क्या संगति है ? क्या अर्थ है ? वैषम्य अपने आप में तो सत्य हो नहीं सकता। विषमता तो ऊपरी ही हो सकती है। दुनिया में जो कुछ हो रहा है उसके भीतर यदि मैं उद्देश्य की, अर्थ की झाँकी न ले सकूँ तो क्या वह सब कुछ पागलपन न मालूम हो ? सब अपना-अपना अहंकार लिए दुनिया से अटकते फिर रहे हैं। इसमें क्या मतलब है ? मैं सच कहता हूँ कि इसे देखकर मेरा सिर चकरा जाता है। यह चाँद क्या है ? आसमान में ये तारे क्या हैं ? आदमी क्यों यहाँ से वहाँ भागता फिर रहा है ? वह क्या खोज रहा है ? क्या ये सब निरे जंजाल ही हैं, भ्रमजाल ही हैं ? क्या यह समस्त चक्र निरर्थक है ? इसे जंजाल मानें, निरर्थक मानें तो जीएंगे किस विश्वास के बल पर ? अविश्वास पर निर्भर रहकर तो जीना दूभर हो जाएगा। जब-जब बहुत आँखें खोलकर और बहुतेरा उन्हें फाड़कर जगत को समझने का प्रयास करता हूँ, तभी-तब बुद्धि त्रस्त हो रहती है। मैं विफलता में डूब जाता हूँ। अरे श्रद्धाहीन बुद्धि तो वंध्या है, उससे कुछ फल नहीं मिलता ! वह तो लँगड़ी है, हमें कुछ भी दूर नहीं ले जाती।

बुद्धि से विज्ञान खड़े होते हैं। हम वस्तु का विश्लेषण करके उसकी व्याख्या करके अणु तक पहुँचते हैं। फिर, बुद्धि वहाँ अणु के साथ टकराती रहती है। अंत में समझ में क्या आता है ? अणु बस अणु बना रहता है, थियरी बस थियरी बनी रहती है। जान पड़ता है कि न अणु की थियरी सत्य है और न कोई और थियरी अंतिम हो सकेगी। सदा की भाँति विराट अज्ञेय हमें अपनी शून्यता में समाए रहता है और हम भौंचक रहते हैं।

विज्ञान की दूरबीन में से सत्य को देखते-देखते जब आँखें हार जाती हैं, सिर दुख जाता है, बुद्धि पछाड़ खाकर स्तब्ध हो रहती है, तब हम शांति की पुकार करते हैं। तब हम श्रद्धा की आवश्यकता अनुभव करते हैं, हम चैन के लिए, रस के लिए, विकल होते हैं। निरुपाय हो हम आँख मीचते हैं और अपने भीतर से ही कहीं से रस का स्रोत फूटा देखना चाहते हैं और जो आँख खोलकर नहीं मिला, आँख मीचकर मिल जाता है। बुद्धिमान जो नहीं पाते, बच्चे, बच्चे बनकर क्या उसे ही नहीं पा लेते हैं ? मैं एक बार जंगल में भटक गया। जंगल तो जंगल था, भटक गया तो राह फिर कैसे मिले ? वहाँ तो चारों ओर पेड़-ही-पेड़ थे जिनकी गिनती नहीं, जिन्हें एक को दूसरे से चीन्हने का उपाय नहीं। घंटे-के-घंटे भटकते हो गए और मैं अधिकाधिक मूढ़ होता चला गया। तब मैं हारकर एक जगह जा बैठा और वहाँ बैठा, आँखें मीचकर, अपने भीतर ही से राह खोजने लगा।

आजकल नये विचारों की लहर दौड़ रही है। मैं आपको अपनी असमर्थता बतला दूँ कि मैं उन लहरों पर बहना नहीं जानता। लहरों पर लहराने में सुख होगा; पर वह सुख मेरे नसीब में नहीं है। हमारे मानव समाज की बात कही जाती है। मानव समाज टुकड़ों में बँटा है, उन टुकड़ों को राष्ट्र कहते हैं, वर्ग कहते हैं, संप्रदाय कहते हैं। उन या वैसे अन्य खंडों में खंडित बनाकर हम उस मानव समुदाय को समझते हैं; पर असल में ऐसी कोई फाँकें हैं नहीं। ये फाँकें तो हम अपनी बुद्धि के सहारे के लिए कल्पित करते हैं। मानव समाज का यह विभाजन हमारी बुद्धि हमें प्रकार-प्रकार से सुझाती है। एक प्रकार का विभाजन अति स्वीकृत हो चला है। वह है-एक मासेज दूसरी 'क्लासेज'; सर्वसाधारण और अधिकार प्राप्त; दरिद्र और विभूति मज्जित। इन दोनों सिरों के बीच में और भी कई मिश्र श्रेणियों की कल्पना है। इस विभाजन को गलत कौन कहेगा ? लेकिन, यह मानना होगा कि विभाजन संपूर्ण सत्य नहीं है। सत्य तो अभेदात्मक है। इस अभेदात्मक सत्य को अपनी बुद्धि से ओझल कर रखने से संकट उपस्थित होगा।

फिर, एक बात और भी है। मानव समाज ही इति नहीं है। पशु समाज, पक्षी समाज, वनस्पति समाज भी है। यही क्यों, सूर्य-नभ-ग्रह-तारा-मंडल भी है। ये सभी कुछ हैं और सभी कुछ की ओर हमें बढ़ना है। मानव समाज को स्वीकार करने के लिए क्या शेष प्रकृति को इनकार करना होगा ? अथवा कि प्रकृति में तन्मयता पाने के लिए मनुष्य संपर्क से भागना पड़ेगा ?

दोनों बातें गलत हैं। धर्म सम्मुखता है। हम उधर मुँह रखें अवश्य जहाँ वह इनसान है, जो परिश्रम में चूर-चूर हो रहा है, देह से दुबला है, और दूसरों के समस्त अनादर का बोझ उठाए हुए झुका हुआ चल रहा है। हम उधर देखें जहाँ पुरुष को इसलिए कुचला जाता है कि दानव मोटा रहे। पीड़ित मानव समाज की ओर हम उन्मुख रहें, अपने सुख का आत्म विसर्जन करें, उनकी वेदना में साझा बँटाएँ। यह सब तो हम करें ही, करेंगे ही। अन्यथा हमारे लिए मुक्ति कहाँ है, पर ध्यान रहे, मानव समाज पर जगत का खात्मा नहीं है, उससे आगे भी सत्य है, वहाँ भी मनुष्य की गति है, वहाँ भी मनुष्य को पहुँचना है।

इस जगह पर आकर मैं कहूँ कि अरे, जो चाँद-तारों के गीत गाता है, उसे क्या वह गीत गाने न दोगे ? उन गीतों में संसार के गर्भ से ली गई वेदना को अपने मन के साथ घनिष्ट करके वह गायक गीत की राह मुफ्त वार दे रहा है। उसको क्या प्रस्ताव से और कानून से रोकेगे ? रोको, पर यह शुभ नहीं है ? अरे उस कवि को क्या कहोगे जो आसमान को शून्य

लेखनीय



अब तक पढ़ी पाठ्यसामग्री में प्रयुक्त आलंकारिक शब्द, महान विभूतियों के कथन, मुहावरे, कहावतें आदि की अपने लेखन में प्रयोग करने हेतु सूची बनाओ।





पठनीय

किसी परिचित/अपरिचित घटना पर आधारित गुटचर्चा में सहभागी होकर उसमें प्रयुक्त उद्धरण, वाक्यों को लिखकर पढ़ो।

दृष्टि से देखता है, कुछ क्षण उसमें लीन रहता है और उसी लीनता के परिणाम में सब वैभव का बोझ अपने सिर से उतारकर स्वयं निरीह बन जाता है और मस्ती के गीत गाता है ? कहीं राजनीतिक उसे पागल, पर वह लोकहितैषी है। उसका प्रयोजन चाहे हिसाब की बही में न आए, पर प्रयोजन उसमें है और वह महान है। सच्चा मनुष्य बनकर कर सकते हैं और अहं शून्य हो जाने से बड़ी सत्यता क्या है ?

कवि स्वयं एकाकी होता है, संपदा से विहीन होता है। वह स्वेच्छापूर्वक सब का दास होता है। स्नेह से वह भीगा है और अपनी नस-नस में गरीब है। जब वह ऐसा है तब उसके आगे साम्राज्य की भी बिसात क्या है ? वह सब उसके लिए तमाशा है। उस कवि से तुम क्या चाहते हो कि जिसके मन में फकीरी समाई है, वह कुनबेदार बना रहकर बस श्रमिक की भलाई चाहने वाला साहित्य लिखे ? श्रमिक और मजदूर वर्ग को प्रेम के द्वारा उसे जानना होगा और प्रेम के द्वारा पाना होगा और जब हम यह करने बढ़ेंगे तो देखेंगे कि हमें उन्हीं जैसा, बल्कि उनसे भी निरीह, स्वयं बन जाना है। फिर हमें कहाँ फुरसत रहेगी कि हम बहुत बातें करें ? अरे, वैसे फकीर की फकीरी और इकतारा क्यों छीनते हो ? अगर वह नदी के तीर पर साँझ के झुटपटे में अकेला बैठा कोई गीत गा रहा है तो उसे गाने दो, छोड़ो मत। उसके इस गीत से किसी मजदूर का, किसी चरवाहे का, बुरा न होगा। होगा तो कुछ भला ही हो जाएगा। उसको उस निर्जनता से उखाड़कर कोलाहलाकुल भीड़ में बलात बिठाने से मत समझो कि तुम किसी का भला कर रहे हो।

व्यक्ति को वेदना की दुनिया पाने दो और पाकर उसे व्यक्त करने दो, जिससे कि लोगों के छोटे-छोटे दिल, कैद से मुक्ति पाएँ और प्रेम से भरकर वे अनंत शून्य की ओर उठें।

अभी चर्चा हुई कि क्या लिखें, क्या न लिखें। कुछ लोग इसको साफ जानते हैं पर मेरी समझ तो कुंठित होकर रह जाती है। मैं अपने से पूछता रहता हूँ कि सत्य कहाँ नहीं है ? क्या है जो परमात्मा से शून्य है ? क्या परमात्मा अखिल व्यापी नहीं है ? फिर जहाँ हूँ, वहाँ ही उसे क्यों न पा लूँ ? भागूँ किसकी ओर ? क्या किसी वस्तु विशेष में वह सत्य इतनी अधिकता से है कि वह दूसरे में रह ही न जाए ? ऐसा नहीं है। अतः निषिद्ध कुछ भी नहीं है। निषिद्ध हमारा दंभ है, निषिद्ध हमारा अहंकार है, निषिद्ध हमारी आसक्ति है। पाप कहीं बाहर नहीं है, वह भीतर है। उस पाप को लेकर हम सुंदर को वीभत्स बना सकते हैं और भीतर के प्रकाश के सहारे हम घृण्य में सौंदर्य के दर्शन कर सकते हैं।

एक बार दिल्ली की गलियों में आँख के सामने एक अजब दृश्य आ गया। देखता हूँ कि एक लड़की है। बेगाना चली जा रही है। पागल है। अठारह-बीस वर्ष की होगी। सिर के बाल कटे हैं। नाक से द्रव बह रहा है। अपरूप उसका रूप है। हाथ और बदन में कीच लगी है। मुँह से लार टपक रही है। मैंने उसे देखा, और मन मिचला आया। अपने ऊपर से काबू मेरा उठ जाने लगा। मैंने लगभग अपनी आँखें मीच लीं और झटपट रास्ता काटकर मैं निकल गया। मेरा मन ग्लानि से भर आया था। कुछ भीतर बेहद खीझ थी, त्रास था। जी घिन से खिन्न था। काफी देर तक मेरे मन पर वह खीज छाई रही; किंतु स्वस्थ होने के बाद मैंने सोचा, और अब भी सोचता हूँ कि क्या वह मेरी तुच्छता न थी? इस भाँति सामने आपदा और विपदा और निरीह मानवता को पाकर स्वयं कन्नी काटकर बच निकलना होगा क्या? मैं कल्पना करता हूँ कि क्राइस्ट होते, गौतम बुद्ध होते, महात्मा गांधी होते तो वे भी क्या वैसा ही व्यवहार करते? वे भी क्या आँख बचाकर भाग जाते? मुझे लगता है कि नहीं, वे कभी ऐसा नहीं करते। शायद वे उस कन्या के सिर पर हाथ रखकर कहते-आओ बेटा, चलो। मुँह-हाथ धो डालो, और देखो यह कपड़ा है, इसे पहिन लो। मुझे निश्चय है कि वे महात्मा और भी विशेषतापूर्वक उस पीड़ित बाला को अपने अंतस्थ सकरुण प्रेम का दान देते।

सत्य हमारे लिए भयंकर है, जो गहन है वह निषिद्ध है और जो उत्कट है वह वीभस्त। अरे, यह क्या इसीलिए नहीं है कि हम अपूर्ण हैं, अपनी छोटी-मोटी आसक्तियों में बँधे हुए हैं! हम क्षुद्र हैं, हम अनधिकारी हैं। मैंने कहा-अनधिकारी। यह अधिकार का प्रश्न बड़ा है। हम अपने साथ झूठे न बने। अपने को बहकाने से भला न होगा। सत्य की ओट थामकर हम अपना और पर का हित नहीं साध सकते। हम अपनी जगह और अपने अधिकार को पहचानें। अपनी मर्यादा लाँघें नहीं। हठपूर्वक सूर्य को देखने से हम अंधे ही बनेंगे पर, बिना सूर्य की सहायता के भी हम देख नहीं सकते, यह भी हम सदा याद रखें। हम जान लें कि जहाँ देखने से हमारी आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं, वहाँ देखने से बचना यद्यपि हितकर तो है, फिर भी वहाँ ज्योति उसी सत्य की है और हम शनैः-शनैः अधिकाधिक सत्य के सम्मुख होने का अभ्यास करते चलें।

— ० —

श्रवणीय



किसी साहित्यकार का
साक्षात्कार सुनो।

शब्द वाटिका

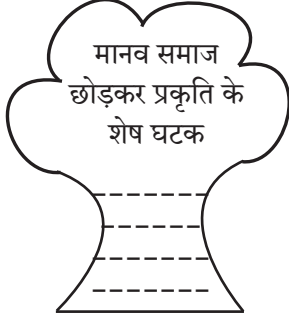
मुहावरे

निबिड़ = घना सघन
दूभर = कठिन
अज्ञेय = जो ज्ञात नहीं है
चीन्हना = पहचानना

सिर चकरा जाना = दुविधा में पड़ना
कन्नी काटना = अनदेखा करते हुए चले जाना

* सूचना के अनुसार कृतियाँ करो :-

(१) कृति पूर्ण करो :



(२) रिक्त स्थानों में कोष्ठक में से उचित शब्द चुनकर लिखो :

१. सत्य तो ----- है ।

(सत्य, अभेदात्मक, भेदात्मक)

२. एक प्रकार का विभाजन अति ----- हो चला है ।

(स्वीकृत, अस्वीकृत, अधिकृत)

(३) कृति पूर्ण करो :



(४) लेखक द्वारा दिल्ली में देखा हुआ दृश्य और उसका परिणाम लिखो ।

सदैव ध्यान में रखो

हमारा प्राचीन साहित्य संस्कृति की धरोहर है ।

भाषा बिंदु

निम्नलिखित शब्दों का वचन परिवर्तन कर उनका अपने वाक्यों में प्रयोग करो :

१. नेता = -----
२. दीपावली = -----
३. चूहे = -----
४. कुआँ = -----



उपयोजित लेखन

‘जल है तो कल है’ विषय पर अस्सी से सौ शब्दों में निबंध लिखो ।



स्वयं अध्ययन

भारतीय शिल्पकला के पाँच उत्तम नमूनों की सूची बनाओ तथा उनकी सचित्र जानकारी लिखो ।